काव्य के अंग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

काव्य के अंग

हिन्दी पाठ्यपुस्तक-समिति के सदस्य

डा० नगेन्द्र (अध्यक्ष), पं० अयोध्यानाथ शर्मा (उपाध्यक्ष), पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, डा० विनयमोहन शर्मा, डा० हरवंशलाल शर्मा, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, डा० विजयपाल सिंह, डा० कन्हैयालाल सहल, श्री विश्वंभरदत्त भट्ट, प्रो० विमल घोष, डा० रवीन्द्र ह० दवे, डा० भालचंद्र तेलंग, श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल, **विशेष आमंत्रित** : प्रो० रघुनाथ सफाया, श्री कृष्णगोपाल रस्तोगी, श्री श्रीपति शर्मा, **सहयोजित सदस्य** : श्री सुरेन्द्र सिंह वर्मा, श्री वेदप्रकाश शास्त्री

'काव्य के अंग' की परामर्श-समिति

डा० नगेन्द्र, डा० भगीरथ मिश्र, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा,
डा० सत्यदेव चौधरी

सचिव

श्री अनिल विद्यालंकार

श्री कृष्णगोपाल रस्तोगी (जून १९६४ से जुलाई १९६५ तक)

संपादन सलाहकार

प्रो० ब्रजभूषण शर्मा

अनुसंधान अधिकारी

श्री प्रभाकर द्विवेदी
श्री रूपलाल वर्मा

काव्य के अंग

लेखक

डा० भगीरथ मिश्र

डा० सत्यदेव चौधरी

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

प्रथम संस्करण

जून, १९६७ : आषाढ़, १८८९

पुनर्मुद्रण

मई, १९६८ : ज्येष्ठ, १८९०

अप्रैल, १९६९ : चैत्र, १८९१

फरवरी, १९७० : माघ, १८९१

फरवरी, १९७१ : माघ, १८९२

फरवरी, १९७३ : माघ, १८९४

PU 10 T

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, १९६७

आवरण चित्र : समर दत्त गुप्त

मूल्य : एक रुपया

प्रकाशन विभाग में म० च० वर्मा, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-१६ द्वारा प्रकाशित तथा डी० पी० सिन्हा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नयी दिल्ली-५५ में मुद्रित ।

विषय-सूची

प्राक्कथन (पृष्ठ ५—६)

अध्याय-१ काव्य (पृष्ठ ९—११)
काव्य के लक्षण (१०)।

अध्याय-२ काव्य के भेद (पृष्ठ १२—१५)
पद्यकाव्य (१२), मुक्तककाव्य (१२), प्रबंध-काव्य (१२), महाकाव्य (१३), खंडकाव्य (१३), गद्यकाव्य (१३), काव्य के अन्य भेद (१३), दृश्य काव्य (१३), श्रव्यकाव्य (१४), नाटक (१४), एकांकी (१५)।

अध्याय-३ शब्दशक्ति (पृष्ठ १६—२१)
शब्दशक्ति (१६), अभिधा शब्दशक्ति (१७), लक्षणा शब्दशक्ति (१७), व्यंजना शब्दशक्ति (१९)।

अध्याय-४ रस (पृष्ठ २२—३५)
स्थायी भाव (२२), विभाव (२३), आलंबन विभाव (२३), उद्दीपन विभाव (२३), अनुभाव (२४), संचारी भाव (२५), स्थायी भाव और संचारी भाव में अंतर (२५), रस (२५), शृंगार रस (२७), शृंगार रस के भेद (२७), संयोग-शृंगार (२७), वियोग शृंगार (२७), हास्य रस (२८), करुण रस (२९), वीर रस (३०), रौद्र रस (३१), भयानक रस (३१), बीभत्स रस (३२), अद्‌भुत रस (३२), शांत रस (३४), वत्सल रस (३४)।

अध्याय-५ गुण तथा रीति (पृष्ठ ३६—३९)
गुण (३६), माधुर्य (३६), ओज (३७), प्रसाद (३८), रीति (३८)।

अध्याय-६ अलंकार (पृष्ठ ४०—५४)

अलंकार का लक्षण (४०), अलंकार के प्रकार (४०), शब्दालंकार (४०), अनुप्रास (४१), यमक (४१), श्लेष (४२), अर्थालंकार (४२), शब्दालंकार और अर्थालंकार में अंतर (४२), उपमा (४३), उपमेय (४३), पूर्णोपमा (४४), लुप्तोपमा (४४), रूपक (४५), उत्प्रेक्षा (४५), अपह्नुति (४६), भ्रम या भ्रांतिमान् (४७), संदेह (४७), अतिशयोक्ति (४८), व्यतिरेक (४९), विभावना (४९), विशेषोक्ति (५०), असंगति (५०), अर्थान्तरन्यास (५१), दृष्टांत (५१), विरोधाभास (५२), दीपक (५३), अन्योक्ति (५३)।

अध्याय-७ छंद (पृष्ठ ५५—६८)

छंद की रचना (५५), पाद या चरण (५५), वर्ण और मात्रा (५६), गति (५६), यति (५६), छंद के दो प्रकार (५७), वर्णिक छंद (५७), गण (५७), वर्णिक छंद के प्रकार (५८), कुछ प्रमुख वर्णिक छंद—इंद्रवज्रा (५८), उपेन्द्रवज्रा (५९), भुजंगप्रयात (५९), वंशस्थ (६०), द्रुतविलंबित (६०), वसंततिलका (६०), मालिनी (६१), मंदाक्रांता (६१), शिखरिणी (६२), शार्दूलविक्रीड़ित (६२), सवैया (६२), दंडक (६३), मात्रिक छंद (६४), मात्रिक छंद के प्रकार (६४), कुछ प्रमुख मात्रिक छंद—सम मात्रिक छंद : चौपाई (६४), रोला (६५), हरिगीतिका (६५), वीर (आल्हा) (६६), अर्द्धसम मात्रिक छंद : दोहा (६६), सोरठा (६७), विषम मात्रिक छंद : छप्पय (६७), कुंडलिया (६८)।

प्राक्कथन

उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण तथा उसके अनुरूप पाठ्यग्रंथों की रचना राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। कुछ वर्षों से केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है और उसकी ओर से इस दिशा में आवश्यक अनुसंधान तथा निर्माण की योजनाएँ चल रही हैं। इनमें से एक योजना के अंतर्गत उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की व्यवस्था की जा रही है। इसी लक्ष्य को सामने रखकर एक समिति का संगठन किया गया है जिसके तत्त्वावधान में इस ग्रंथमाला का संपादन तथा प्रकाशन हो रहा है। इस समिति में अनुभवी शिक्षक, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विद्वान तथा प्रशिक्षण-विशेषज्ञ सम्मिलित हैं।

हिन्दी पाठ्यपुस्तक-समिति के तत्त्वावधान में अब तक **गद्य-संकलन** और **काव्य-संकलन** नाम की दो पाठ्यपुस्तकें उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए प्रकाशित हो चुकी हैं और पिछले चार वर्षों से दिल्ली प्रशासन तथा कतिपय अन्य राज्यों के स्कूलों में पढ़ाई जा रही हैं। इन पुस्तकों पर अनुभवी अध्यापकों की अनुकूल प्रतिक्रिया हुई है जिससे समिति के अध्यक्ष, सदस्यों और कार्यकर्त्ताओं को संतोष है।

उपर्युक्त दोनों तो पाठ्यपुस्तकें हैं—उनके प्रत्येक अंश की व्याख्या करना अध्यापक के लिए आवश्यक है। उनके साथ ही उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में अन्य पुस्तकें भी निर्धारित रहती हैं जिनका गहन अध्ययन आवश्यक नहीं होता। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हिन्दी पाठ्यपुस्तक-समिति ने अपनी योजना के दूसरे चरण में पूरक-पठन के लिए निम्नलिखित ६ पुस्तकें तैयार करने का निश्चय किया था:

कहानी-संकलन ; जीवनी-संकलन ; एकांकी-संकलन ; हिन्दी साहित्य का इतिहास ; हिन्दी व्याकरण और रचना तथा **काव्य के अंग**।

इनमें से चार पुस्तकें अब प्रकाशित हो गई हैं और **'गद्य-संकलन'** व **'काव्य-संकलन'** के साथ ही उच्चतर माध्यमिक कक्षा के छात्रों के लिए सुलभ हैं। आशा है कि ये सभी पुस्तकें मिलकर इन छात्रों को हिन्दी भाषा और साहित्य के विषय में अभीष्ट जानकारी दे सकेंगी।

इन नवनिर्मित पुस्तकों में से प्रत्येक की विशेषताओं का उल्लेख उसकी भूमिका में कर दिया गया है। सामान्यतया हमारा उद्देश्य रहा है कि :

(१) पुस्तकों की सामग्री सुबोध और रोचक होने के साथ-साथ उपयोगी और प्रेरणादायी हो।

(२) हिन्दी साहित्य के सभी कालों, विशिष्ट विधाओं और विचार-धाराओं का उनमें प्रतिनिधित्व हो ।

(३) हिन्दी में प्रतिष्ठाप्राप्त प्राचीन और अर्वाचीन कवियों एवं लेखकों के जीवन और उनकी कुछ रचनाओं के साथ छात्रों का परिचय हो सकें ।

(४) ग्यारहवीं कक्षा पास करते-करते छात्र हिन्दी भाषा और साहित्य का इतना ज्ञान प्राप्त कर लें जिससे वे हिन्दी में पढ़ने, सोचने और लिखने में समर्थ हो जाएँ ।

(५) छात्र न केवल साहित्य का आस्वादन कर सकें वरन् वे स्वयं भी साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हो सकें ।

हमें आशा है कि ये पुस्तकें उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में सफल होंगी ।

प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों को काव्य-शास्त्र के अंगों का प्रारंभिक परिचय कराना है । जिस प्रकार किसी भाषा के विशुद्ध ज्ञान के लिए उसके व्याकरण का अध्ययन अपेक्षित रहता है उसी प्रकार किसी काव्य के गुण-दोष-परीक्षण के लिए उससे संबद्ध काव्य-शास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता रहती है । यह अध्ययन काव्य के आस्वादन में भी किसी न किसी रूप में सहायक अवश्य होता है । माध्यमिक कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते छात्रों में काव्य के आस्वादन की क्षमता का थोड़ा-बहुत विकास हो जाता है और यह वांछनीय हो जाता है कि उनमें गुण-दोष-परीक्षण की प्रवृत्ति को जाग्रत किया जाए । अतः काव्य-शास्त्र का प्रारंभिक अध्ययन इस कक्षा के छात्रों के लिए आवश्यक होता है । प्रस्तुत पुस्तक की रचना इसी उद्देश्य से की गई है ।

पिछली पुस्तकों की तरह इस पुस्तक के निर्माण में भी हमें अनेक विद्वानों और शिक्षा-विशेषज्ञों का सहयोग मिला है । हिन्दी पाठ्यपुस्तक-समिति के विद्वान सदस्यों, संपादन सलाहकारों तथा अन्य विशेषज्ञों को भी हम हृदय से धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमारी योजनाओं को क्रियान्वित करने में सक्रिय योगदान दिया है ।

अंत में हम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अध्यक्ष और अन्य अधिकारियों के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं जिनके निरंतर सहयोग के बिना यह अनुष्ठान पूर्ण न हो पाता ।

अध्याय-१

□

काव्य

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसमें अपने मन के भावों और विचारों को प्रकट करने और दूसरे के मन के भावों और विचारों को जानने की बलवती इच्छा रहती है। भावों और विचारों के इस आदान-प्रदान का सबसे सरल और समर्थ साधन है वाणी।

वाणी का प्रयोग मुख्यतः तीन प्रकार से किया जाता है--(१) अपनी बात को सीधे-सादे ढंग से कहने के लिए, (२) किसी विचार का प्रतिपादन करने के लिए, और (३) अपने अनुभव को इस प्रकार प्रकट करने के लिए कि श्रोता उससे प्रभावित हो सके। इनमें से वाणी के पहले प्रयोग को वार्ता कहते हैं, दूसरे को शास्त्र और तीसरे को काव्य, जिसका व्यापक नाम साहित्य भी है।

जिसमें ज्ञान की प्रधानता हो वह शास्त्र है और जिसमें भाव या प्रभाव की प्रधानता हो वह काव्य या साहित्य है।

हिन्दी में काव्य का प्रयोग केवल कविता के लिए भी होने लगा है, पर मूल रूप में काव्य का अर्थ व्यापक है, और यहाँ हम उसका इसी अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं।

कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि सब इसके अंतर्गत आते हैं।

काव्य के लक्षण

काव्य के अनेक लक्षण हैं। एक लक्षण यह है--

रमणीय अर्थ को व्यक्त करनेवाली शब्दावली का नाम काव्य है।

इसका सीधा अर्थ यह है कि काव्य वाणी का वह रूप है जिसमें कल्पना के माध्यम से मानव-हृदय की अनुभूतियों का रोचक वर्णन रहता है।

इस प्रकार काव्य के अंतर्गत वे रचनाएँ आती हैं जो अपनी विषय-वस्तु और वर्णन-शैली के द्वारा पाठक को आनंद प्रदान करती हैं।

काव्य के स्वरूप को समझने के लिए यह उदाहरण लीजिए--

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह, उत्सुक है उनकी धूल। —प्रसाद : कामायनी
(काव्य-संकलन, पृ० १७९)

'कामायनी' खड़ीबोली का एक प्रसिद्ध महाकाव्य है, जिसके रचयिता जयशंकर प्रसाद हैं। इसमें श्रद्धा निराश मनु को सांत्वना देती हुई कहती है, 'प्रकृति रूपी नारी के यौवन का शृंगार बासी फूल कभी नहीं कर सकते--वे तो शीघ्र ही धूल में जा मिलेंगे।'

उक्त कथन से श्रद्धा का यह अभिप्राय है कि यदि तुम इस संसार को समृद्ध बनाना चाहते हो तो तुम्हें उत्साह-पूर्वक कर्म करना होगा। इस जीवन का विकास निर्जीव

विचारों से नहीं हो सकता।

कवि ने इस संदेश को सीधे-सादे ढंग से न कहकर कल्पना का आधार लेते हुए उपर्युक्त शैली में प्रस्तुत किया है, जिससे पाठक अभीष्ट संदेश को ग्रहण करने के साथ-साथ एक विशेष प्रकार के आह्लाद का भी अनुभव करता है।

एक उदाहरण और लीजिए--

संध्या आने पर प्रायः सब लोग अपना दैनिक कार्य छोड़कर विश्राम करने चले जाते हैं, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने इस भाव को लेकर संध्या को एक सुंदरी के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा है :

मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने।

—निराला : अपरा
(काव्य-संकलन, पृ० २०५)

अंत में एक तीसरा उदाहरण प्राचीन कविता में से उद्धृत है।

श्री कृष्ण की भक्ति से मन निर्मल हो जाता है। बिहारी ने इस भाव को कविता का रूप इस प्रकार दिया है--

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्जल होय।

—बिहारी : सतसई
(काव्य-संकलन, पृ० १३५)

इन सभी उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट है कि कवि लोक-जीवन से ही विषय-सामग्री लेकर उसे अपनी कल्पना और सुंदर शब्दावली द्वारा काव्य का रूप दे देता है। इस प्रकार काव्य एक ओर वार्ता से और दूसरी ओर शास्त्र से भिन्न होता है।

अध्याय-२

□ □

काव्य के भेद

काव्य के वाह्य रूप के आधार पर इसके दो भेद हैं—
पद्य-काव्य और गद्य-काव्य ।

पद्य-काव्य में छंद अथवा नियमित लय का प्रयोग किसी न किसी रूप में अनिवार्य रूप से किया जाता है, किन्तु गद्य-काव्य में उसका प्रयोग नहीं किया जाता ।

पद्य-काव्य

पद्य-काव्य के प्रमुख दो भेद हैं—मुक्तक-काव्य और प्रबंध-काव्य ।

मुक्तक-काव्य : मुक्तक-काव्य में प्रत्येक छंद अपने आप में स्वतंत्र और पूर्ण रहता है । इसका तात्पर्य यह है कि उस छंद के भाव को समझने के लिए किसी दूसरे छंद की आवश्यकता नहीं होती । यही कारण है कि इन छंदों को जिस क्रम से रखना चाहें रख सकते हैं । बिहारी और रहीम के दोहे मुक्तक-काव्य हैं ।

प्रबंध-काव्य : प्रबंध-काव्य में अनेक छंद किसी एक कथा-सूत्र में पिरोए हुए रहते हैं । छंदों के क्रम को बदला नहीं जा सकता । इसमें किसी व्यक्ति के जीवन-चरित्र का

पूरा या आंशिक रूप में वर्णन किया जाता है।

प्रबंध-काव्य के दो भेद हैं--महाकाव्य और खंडकाव्य।

महाकाव्य

महाकाव्य का उद्देश्य महान होना चाहिए। इसमें किसी महान व्यक्ति का पूर्ण जीवन विस्तृत कथा के रूप में वर्णित किया जाता है। यह व्यक्ति इतिहासप्रसिद्ध अथवा पुराण-प्रसिद्ध होता है। उसका चरित्र उदात्त होता है और वह दुष्टों का दलन तथा समाज का मार्गदर्शन करता है।

महाकाव्य में आठ या आठ से अधिक सर्ग होते हैं जो आपस में सुगठित होते हैं। इसमें अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग रहता है। इसका प्रधान रस शृंगार, वीर अथवा शांत होता है, अन्य रस प्रसंगानुकूल सहायक रूप में रहते हैं। 'पृथ्वीराज रासो', 'रामचरितमानस', 'प्रियप्रवास', 'कामायनी', 'लोकायतन' आदि हिन्दी के प्रसिद्ध महा-काव्य हैं।

खंडकाव्य

खंडकाव्य में एक व्यक्ति के जीवन के किसी एक मार्मिक प्रसंग का वर्णन किया जाता है। 'पार्वती-मंगल', 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी' आदि हिन्दी के प्रसिद्ध खंडकाव्य हैं।

गद्य-काव्य

गद्य-काव्य के अंतर्गत, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध आदि आते हैं।

काव्य के अन्य भेद

हमारी इंद्रियों के माध्यम के आधार पर भी काव्य के दो भेद किए जाते हैं--दृश्य और श्रव्य।

दृश्य काव्य : दृश्य काव्य उसे कहते हैं जिसका आनंद

हम मुख्यतः नेत्रों द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। नाटक और एकांकी दृश्य काव्य कहलाते हैं।

श्रव्य काव्य : श्रव्य काव्य उसे कहते हैं जिसका आनंद हम मुख्यतः कानों द्वारा प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त काव्य रूपों में से नाटक को दृश्य काव्य कहते हैं तथा अन्य शेष काव्य-रूपों--मुक्तक, महाकाव्य, खंड-काव्य, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि को श्रव्य काव्य।

नाटक

नाटक काव्य का सबसे उत्कृष्ट रूप माना जाता है। इसका रंगमंच पर अभिनय किया जाता है। नाटक का वास्तविक आनंद तभी प्राप्त होता है जब हम रंगमंच पर इसका अभिनय देखते हैं।

नाटक को तीन या इससे अधिक अंकों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक अंक दृश्यों में विभाजित रहता है इसका कथानक प्रायः किसी महान व्यक्ति के जीवन-विकास के साथ संबद्ध रहता है—चाहे वह व्यक्ति ऐतिहासिक हो अथवा पौराणिक। किसी काल्पनिक व्यक्ति के जीवन को लेकर भी नाटक की रचना की जा सकती है, पर उसका व्यक्तित्व महान होना चाहिए। यह व्यक्ति नाटक का नायक कहलाता है।

नाटक में मुख्य कथा के साथ-साथ गौण या प्रासंगिक कथाएँ भी रहती हैं जो मुख्य कथा को आगे बढ़ाने में सहायक होती हैं। इसमें प्रायः शृंगार अथवा वीर रस को मुख्य स्थान दिया जाता है, शेष रस गौण होते हैं।

नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीव रूप से किया जाना चाहिए। संवाद (कथोपकथन) नाटक का प्राण

माना गया है। इसका प्रयोग पात्रों के अनुकूल किया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार गीतों को भी स्थान देना चाहिए।

नाटक का उद्देश्य महान होता है। उसमें मानव-जीवन की किसी गंभीर समस्या का निर्देश और प्रायः उसके समाधान का संकेत भी रहता है।

हिन्दी के प्रसिद्ध नाटक हैं—'चंद्रगुप्त' (प्रसाद), 'सिन्दूर की होली' (लक्ष्मीनारायण मिश्र),' 'कोणार्क' (जगदीशचंद्र माथुर) आदि।

एकांकी (एकांकी नाटक)

एकांकी में केवल एक अंक होता है जिसे अनेक दृश्यों में भी विभाजित कर सकते हैं। इसका कथानक एक व्यक्ति के जीवन की किसी एक महत्त्वपूर्ण घटना पर आधृत होता है। अतः इसमें अन्य प्रासंगिक कथाओं को स्थान नहीं दिया जाता।

नाटक और एकांकी में मुख्य अंतर यह है कि नाटक में किसी व्यक्ति के प्रायः समग्र जीवन को चित्रित किया जाता है जब कि एकांकी में उसके जीवन की किसी एक महत्त्वपूर्ण घटना को।

उदयशंकर भट्ट, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि ने अनेक एकांकी नाटक लिखे हैं।

अध्याय-३

□ □ □

शब्दशक्ति

हम जो भाषा बोलते हैं उसमें दो तत्त्व रहते हैं––शब्द, और अर्थ। जो ध्वनि हमें सुनाई पड़ती है वह 'शब्द' है, और उस ध्वनि से हम जो संकेत या मतलब ग्रहण करते हैं वह उसका 'अर्थ' है। यह संकेत उस शब्द द्वारा निर्दिष्ट अर्थ के कारण होता है।

शब्दशक्ति

शब्द का अर्थ-बोध करानेवाली शक्ति शब्दशक्ति कहलाती है। 'शब्दशक्ति' को हम संक्षेप में 'शक्ति' भी कहते हैं। शब्दशक्तियाँ तीन मानी गई हैं––अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

इन्हीं के अनुसार शब्द भी तीन हैं––वाचक, लक्षक और व्यंजक; तथा अर्थ भी तीन हैं––वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य।

जिस शब्द का अर्थ अभिधा शब्दशक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता है वह वाचक शब्द कहलाता है, और यह अर्थ

वाच्यार्थ कहलाता है। वाच्यार्थ को मुख्यार्थ अथवा प्रचलित अर्थ भी कहते हैं।

जिस शब्द का अर्थ लक्षणा शब्दशक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता है, वह लक्षक शब्द कहलाता है और यह अर्थ लक्ष्यार्थ कहलाता है।

जिस शब्द का अर्थ व्यंजना शब्दशक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता है, वह व्यंजक शब्द कहलाता है और यह अर्थ व्यंग्यार्थ कहलाता है।

अभिधा शब्दशक्ति

किसी शब्द को सुनते ही सबसे पहले हमें उसके प्रचलित अर्थ का ज्ञान होता है। जिस शक्ति से किसी शब्द के प्रचलित अर्थ का ज्ञान होता है, उसे अभिधा शक्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ––'अपना घर सब को प्यारा लगता है।' यहाँ 'घर' शब्द का अर्थ है––रहने का स्थान। यह अर्थ अभिधा शक्ति द्वारा संकेतित होता है।

लक्षणा शब्दशक्ति

हम कभी-कभी ऐसे शब्द का प्रयोग करते हैं, जिससे उस शब्द के प्रचलित अर्थ को ग्रहण करने में बाधा पहुँचती है। जैसे किसी व्यक्ति के साहसपूर्ण कार्य करने पर हम यह कहते हैं कि 'यह शेर है'। यहाँ पर 'शेर' का सामान्य अर्थ अभीष्ट नहीं है। इसके स्थान पर हम वीर या साहसी का अर्थ ग्रहण करते हैं। शब्द की जिस शक्ति से यह अर्थ प्राप्त होता है, उसे लक्षणा कहते हैं।

लक्षणा शक्ति का लक्षण

किसी शब्द के प्रचलित अर्थ के ग्रहण में बाधा होने पर उससे संबद्ध अन्य अर्थ प्रदान करानेवाली शक्ति को लक्षणा शक्ति कहते हैं।

'वह शेर है' इस वाक्य में 'शेर' शब्द का वाच्यार्थ है—एक विशेष पशु और लक्ष्यार्थ है—साहसी। यहाँ 'शेर' शब्द लक्षक है और उसका लक्ष्यार्थ है साहसी।

हम कभी कहते हैं 'मेरे सिर पर क्यों बैठते हो?' यहाँ पर 'सिर' का अर्थ शरीर का अंग न लिया जाकर 'अति निकट' लिया जाता है। 'सारा घर मेला देखने गया है'; इस वाक्य में 'घर' का प्रचलित अर्थ न लेकर उससे संबंधित अर्थ 'घर में रहने वाले लोग' लिया जाता है। अर्थ भी लक्षणा शक्ति द्वारा ज्ञात होते हैं।

इसी प्रकार 'उसके लिए चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात है।' इस वाक्य में 'चुल्लू भर पानी में डूब मरना' से हमें इन शब्दों का मुख्यार्थ (वाच्यार्थ) अभीष्ट नहीं है। हम इनसे दूसरा अर्थ लेते हैं कि 'बड़ी लज्जा की बात है।' यह अर्थ लक्षणा से निकलता है। सभी मुहावरों तथा लोकोक्तियों में लक्षणा शक्ति के द्वारा अर्थ ग्रहण किया जाता है।

एक पद्यबद्ध उदाहरण लीजिए—

विद्युत की इस चकाचौंध में
देख, दीप की लौ रोती है,
अरी, हृदय को थाम, महल के
लिए झोंपड़ी बलि होती है।

—दिनकर : रेणका

इस पद्य का वाच्यार्थ स्पष्ट है कि विद्युत की इस चकाचौंध में दीप की लौ रोती है। अरी! हृदय को थाम ले, यहाँ महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है। किन्तु इसका लक्ष्यार्थ यह है कि महलों में रहनेवाले लोगों को जो वैभव प्राप्त है वह वस्तुतः झोंपड़ी में रहनेवाले मज़दूरों के श्रम का ही परिणाम है।

इस पद्य में 'महल' का अर्थ महल के निवासी अर्थात् 'धनी' और 'झोंपड़ी' का अर्थ झोंपड़ी के निवासी अर्थात् 'निर्धन' अर्थ भी लक्षणा शक्ति द्वारा गृहीत होते हैं। इसी प्रकार इसी पद्य में प्रयुक्त 'विद्युत की चकाचौंध' का 'वैभव' अर्थ और 'दीपक की लौ का रोना' का 'श्रमिक जीवन' अर्थ भी लक्षणा शक्ति द्वारा ज्ञात होते हैं।

इस प्रकार लक्षक शब्द का प्रयोग करने से कथन में विशेष चमत्कार आ जाता है।

व्यंजना शब्दशक्ति

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी शब्द का अभिधा शक्ति अथवा लक्षणा शक्ति से अर्थ प्रकट नहीं होता। उसके लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। उसे व्यंजना कहते हैं।

अभिधा और लक्षणा शक्तियों के उपरांत जिस शक्ति से हमें अन्य अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं।

काव्य में व्यंजना शक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उक्ति को चमत्कृत करने का वह सबसे बड़ा साधन है।

व्यंजना शक्ति का एक प्रसिद्ध उदाहरण है—'सूर्य डूब

गया ।' इस वाक्य के सुनने के उपरांत प्रत्येक व्यक्ति इससे भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण करता है । उदाहरणार्थ—एक चरवाहे के लिए इसका अर्थ हो सकता है कि अब पशुओं को घर ले जाना चाहिए, और एक भक्त के लिए यह अर्थ हो सकता है कि अब प्रार्थना करने का समय आ गया, आदि । ये अर्थ व्यंजना शक्ति से निकलते हैं ।

अब एक पद्यबद्ध उदाहरण लीजिए—

प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिजु-मीन-जुग, जनु बिधुमंडल डोल ॥

—तुलसीदास : **रामचरितमानस**
(काव्य-संकलन, पृ० ३१)

यहाँ धनुष-यज्ञ के प्रसंग में सीता जी की मनोदशा का चित्रण किया गया है । इस पद्य के पूर्वार्ध का वाच्यार्थ यह है कि सीता जी पहले राम की ओर देखती हैं और फिर पृथ्वी की ओर । इस तरह उनके चपल नेत्र शोभित हो रहे हैं । अभिधा शक्ति द्वारा बस हमें इतना ही अर्थ ज्ञात होता है ।

किन्तु व्यंजना शक्ति से यह अर्थ निकलता है कि सीता के मन में इस समय उत्सुकता, हर्ष, लज्जा आदि के भाव क्षण-क्षण में प्रकट हो रहे हैं । राम को देखकर उत्सुकता और हर्ष का भाव उत्पन्न होता है, साथ ही दूसरों की उपस्थिति का ध्यान कर उनके मन में तुरंत लज्जा भी आ जाती है, और वे पृथ्वी की ओर देखने लगती हैं । पर हर्ष और उत्सुकता के वशीभूत होने से वे अपने को रोक नहीं पातीं और फिर राम की ओर देखती हैं, किन्तु लज्जा-

वश फिर पृथ्वी की ओर देखने लगती हैं। इस प्रकार यह चक्र कुछ समय तक चलता रहता है।

स्पष्ट है कि उक्त पद्य के पूर्वार्ध से हमें हर्ष, उत्सुकता, लज्जा आदि भावों की जो प्रतीति होती है वह न तो अभिधा शक्ति से होती है और न लक्षणा शक्ति से। इस प्रकार के सभी काव्य-सौन्दर्य की प्रतीति हमें व्यंजना शक्ति द्वारा होती है।

एक और उदाहरण लीजिए—

उदयाचल से बाल-हंस फिर
उड़ता अंबर में अवदात,
फैल स्वर्ण पंखों से हम भी
करते द्रुत मारुत से बात।

—सुमित्रानंदन पंत : पल्लव
(काव्य-संकलन, पृ० २१४)

इस पद्य में प्रयुक्त 'हंस' शब्द अनेकार्थक है। 'हंस' एक पक्षी का नाम है तथा 'हंस' का अर्थ सूर्य भी है। यहाँ अभिधा शक्ति द्वारा हंस शब्द सूर्य का ही वाचक है, इस नाम के पक्षी का वाचक नहीं। किन्तु संपूर्ण पद्य को पढ़कर हमें व्यंजना शक्ति द्वारा यह अर्थ भी प्रतीत होता है कि 'बाल हंस' अर्थात् नवोदित सूर्य 'बाल हंस' (छोटे हंस पक्षी) के समान आकाश में उड़ रहा है। ऐसे स्थल भी व्यंजना शक्ति के उदाहरण माने जाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य-सौन्दर्य के बोध में व्यंजना शक्ति का विशिष्ट तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अध्याय-४

□ □ □ □

रस

कविता, कहानी, उपन्यास आदि को पढ़ते या सुनते समय तथा नाटक को देखते समय पाठक, श्रोता या दर्शक को जो आनंद प्राप्त होता है वह रस कहलाता है। रस के चार अंग माने गए हैं--स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

इन अंगों का निरूपण करने से पहले एक अन्य शब्द पर प्रकाश डालना अपेक्षित है। यह शब्द है 'सहृदय'। सहृदय उस व्यक्ति को कहते हैं जिसमें काव्य-नाटक आदि से आनंद प्राप्त करने की क्षमता होती है।

सहृदय को पाठक, दर्शक आदि नाम भी दिए जाते हैं किन्तु सहृदय शब्द अधिक प्रचलित है।

स्थायी भाव

सहृदय के हृदय में जो भाव स्थायी (स्थिर) रूप से विद्यमान रहते हैं उन्हें स्थायी भाव कहते हैं।

स्थायी भाव नौ माने जाते हैं--रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद।

'वात्सल्य' नाम का दसवाँ स्थायी भाव भी स्वीकार किया गया है।

विभाव

(स्थायी) भाव के कारण को विभाव कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जिसके कारण सहृदय को रस प्राप्त होता है वह विभाव कहलाता है।

विभाव के दो प्रकार हैं--आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव।

आलंबन विभाव

आलंबन विभाव ऐसे कारण को कहते हैं जिस पर भाव अवलंबित रहता है।

इसके दो भेद हैं--आश्रय और विषय।

आश्रय—जिस व्यक्ति के चित्त में रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं उसे आश्रय कहते हैं।

विषय—जिस व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति आश्रय के मन में रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं उसे विषय कहते हैं। विषय का दूसरा नाम **आलंबन** भी है।

उदाहरणार्थ, हरिश्चंद्र द्वारा अपने मृत पुत्र रोहिताश्व के प्रति विलाप करने के प्रसंग में हरिश्चंद्र को 'आश्रय' कहेंगे, और रोहिताश्व को 'विषय' अथवा 'आलंबन,' क्योंकि हरिश्चंद्र के हृदय में रोहिताश्व के प्रति शोक-भाव है।

आश्रय और विषय (आलंबन) इन दोनों को आलंबन विभाव कहते हैं।

उद्दीपन विभाव

जो आलंबन द्वारा उत्पन्न भावों को उद्दीप्त करते

हैं अर्थात् तीव्र करते हैं, उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं।

उद्दीपन विभाव के दो प्रकार हैं--बाहर का वातावरण और विषय (आलंबन) की बाहरी चेष्टाएँ।

उदाहरणार्थ, निर्जन वन में अंधकारपूर्ण रात्रि के समय सिंह को देखकर कोई व्यक्ति भयभीत हो गया। इस दृश्य का काव्य में वर्णन हो तो वह भयभीत व्यक्ति 'आश्रय' कहलाएगा क्योंकि उसमें भय का भाव उत्पन्न हुआ है, और सिंह 'विषय' (आलंबन) कहलाएगा क्योंकि उसके प्रति आश्रय के मन में भय का भाव उत्पन्न हुआ है।

निम्नोक्त दो कारण इस भय के भाव को और भी अधिक उद्दीप्त करते हैं--उसे तीव्र कर देते हैं। पहला कारण है बाहरी वातावरण, अर्थात् सुनसान जंगल, अंधकारपूर्ण रात्रि; और दूसरा कारण है विषय की बाहरी चेष्टाएँ, जैसे—सिंह का गर्जन, उसकी भयंकर मुखाकृति, खुला मुँह, बड़े-बड़े जबड़े, झपट्टा मारते हुए पंजे आदि। ये दोनों कारण उद्दीपन विभाव हुए।

अनुभाव

आश्रय की बाह्य चेष्टाओं को 'अनुभाव' कहते हैं।

जैसे--सिंह से भयभीत व्यक्ति का काँपना, चीखना, हाथ-पाँव का सुन्न हो जाना अथवा भागने के लिए प्रयास करने पर भी भाग न सकना, पसीना-पसीना होना, मुख का पीला पड़ जाना, रोंगटे खड़े होना--ये सभी बाह्य चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती हैं।

संचारी भाव

आश्रय के चित्त में उत्पन्न होनेवाले अस्थिर मनो-विकारों को संचारी भाव कहते हैं।

उदाहरणार्थ, भयानक रस के प्रसंग में सिंह से भय-भीत व्यक्ति (आश्रय) के मन में उत्पन्न चिन्ता, शंका, त्रास, मोह, जड़ता, उन्माद, आदि भाव उत्पन्न होंगे। इन्हीं को संचारी भाव कहते हैं।

यों तो संचारी भाव की गणना कर सकना असंभव है, फिर भी काव्य-मनीषियों ने इनकी संख्या ३३ मानी है। कुछ प्रमुख संचारी भावों के नाम हैं--

निर्वेद, ग्लानि, मद, स्मृति, शंका, आलस्य, चिन्ता, दीनता, मोह, चपलता, हर्ष, धृति, निद्रा, त्रास, उग्रता, उन्माद आदि।

स्थायी भाव और संचारी भाव में अंतर

इन दोनों में एक अंतर यह है कि स्थायी भाव उत्पन्न हो कर नष्ट नहीं होते, अंत तक बने रहते हैं, किन्तु संचारी भाव पानी के बुलबुलों की भाँति बनते-मिटते रहते हैं।

दूसरा अंतर यह है कि स्थायी भाव तो प्रत्येक रस का नियत होता है, किन्तु एक ही संचारी भाव अनेक रसों के साथ रह सकता है। यही कारण है कि संचारी भाव का दूसरा नाम व्यभिचारी भाव है।

रस

रस के उक्त चारों अंगों का स्वरूप जान लेने के बाद निष्कर्ष यह निकला कि--

सहृदय के हृदय में स्थित स्थायी भाव का जब विभाव,

अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह रस का रूप ग्रहण कर लेता है।

इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई व्यक्ति (सहृदय) किसी काव्य को पढ़ता है अथवा नाटक को देखता है तो उसके हृदय में स्थित रति, हास आदि स्थायी भावों में से कोई एक स्थायी भाव काव्य अथवा नाटक के विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का संयोग प्राप्त कर 'रस' नाम ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त स्थिति में 'रति' स्थायी भाव को हम 'रति' नाम से न पुकारकर 'शृंगार रस' नाम से पुकारते हैं।

इस सिद्धांत को हम यों प्रकट करते हैं—

$$\text{सहृदय का स्थायी भाव} + \left\{ \begin{matrix} \text{विभाव} \\ \text{अनुभाव} \\ \text{संचारी भाव} \end{matrix} \right\} = \text{रस}$$

उक्त दस स्थायी भाव जिन रसों में अभिव्यक्त होते हैं उनकी सूची इस प्रकार है—

स्थायी भाव	रस
१. रति	शृंगार
२. हास	हास्य
३. शोक	करुण
४. क्रोध	रौद्र
५. उत्साह	वीर
६. भय	भयानक
७. जुगुप्सा (घृणा)	बीभत्स
८. विस्मय	अद्‌भुत
९. निर्वेद	शांत
१०. वात्सल्य	वत्सल

रस-विषयक उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सभी रसों के लक्षण बनाए जा सकते हैं।

शृंगार रस

सहृदय के हृदय में रति नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग होता है तो वह शृंगार रस का रूप ग्रहण कर लेता है।

शृंगार रस के भेद

शृंगार रस के दो भेद हैं—संयोग और वियोग।

संयोग शृंगार : जिस रचना में नायक और नायिका के मिलन का वर्णन हो वहाँ संयोग शृंगार होता है।

वियोग शृंगार : जिस रचना में नायक और नायिका का विरह-वर्णन हो वहाँ वियोग शृंगार होता है।

संयोग शृंगार का उदाहरण—

एक पल, मेरे प्रिया के दृग-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे।
चपलता ने इस विकंपित पुलक से,
दृढ़ किया मानो प्रणय-संबंध था॥

—सुमित्रानंदन पंत : **ग्रंथि**

इस पद्य में रति स्थायी भाव है। आलंबन विभाव हैं—नायक और नायिका। उद्दीपन विभाव है—नायिका के दृग-पलकों का ऊपर उठना और नीचे गिरना। अनुभाव है—नायक का विकंपित पुलक। संचारी भाव हैं—चपलता, लज्जा आदि।

इस प्रकार सहृदय के हृदय में रति नामक स्थायी भाव इन सब विभाव आदि के संयोग से शृंगार रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

वियोग शृंगार का उदाहरण—

उनका यह कुंज-कुटीर वही झड़ता उड़ अंशु-अबीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब है सुन चातक की रट 'पीव कहाँ?'
अब भी सब साज-समाज वही तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखि, जा पहुँचे सुधि-संग कहीं यह अंध सुगंध समीर वहाँ!

—मैथिलीशरण गुप्त : **यशोधरा**

उपर्युक्त छंद में विरहिणी यशोधरा की विरह-दशा का वर्णन किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती सब साज-समाज ज्यों का त्यों होने पर भी उसे वह सुख नहीं देता, वरन् दुःख को उत्पन्न करने वाला है।

इस पद्य में रति स्थायी भाव है। यशोधरा आश्रय है। सिद्धार्थ विषय (आलंबन) है। कुंज-कुटीर तथा उसमें प्रकट होने वाली रंग-बिरंगी किरणें, कोकिल, भौंरों और पपीहों की ध्वनियाँ उद्दीपन विभाव हैं। सखी से विषाद-भरे स्वर में कथन अनुभाव है। स्मृति, मोह, विषाद, धृति आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यह वियोग शृंगार का उदाहरण है।

हास्य रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) हास नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह हास्य रस का रूप ग्रहण कर लेता है।

उदाहरण—

इस दौड़-धूप में क्या रक्खा, आराम करो, आराम करो।
आराम जिन्दगी की कुंजी, इससे न तपेदिक होती है,
आराम सुधा की एक बूंद, तन का दुबलापन खोती है।
आराम शब्द में राम छिपा, जो भव बंधन को खोता है,
आराम शब्द का ज्ञाता तो बिरला ही योगी होता है।
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ, मेरे अनुभव से काम करो।

—गोपालप्रसाद व्यास : **अजी सुनो**

यहाँ हास स्थायी भाव है। व्यंग्य का पात्र अर्थात आलसी व्यक्ति आलंबन है। व्यंग्योक्तियाँ उद्दीपन विभाव हैं। खिलखिलाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता, निर्लज्जता आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यह हास्य रस का उदाहरण है।

हास्य रस का एक अन्य उदाहरण लीजिए—

सब यानन ते श्रेष्ठ अति, द्रुत गति गामिनि कार।
धनिक जनन के जिय बसी, निसि-दिन करति बिहार॥
'पौं पौं' करति सुहावति कैसे, मुनि मख-संख बजावहिं जैसे।
मग बिच कीच उलीचत कैसे, फागुन फाग रचहिं जन जैसे।
विद्युत दीप करहिं उजियारी, जनु 'हरि'–चंद, उगेउ तम हारी।
चारु चक्रधारिनि मन-भावन, कलरव करति विमोद बढ़ावन।

—हरिशंकर शर्मा

यहाँ हास स्थायी भाव है। 'कार' आलंबन है। मुनियों की शंख-ध्वनि के सामने कार की 'पौं पौं', रास्ते में फाग जैसी कीचड़ उलीचना आदि उद्दीपन विभाव हैं। ओठ का स्फुरित होना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, चपलता आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यह हास्य रस का उदाहरण है।

करुण रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) शोक नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के साथ संयोग हो जाता है तो वह करुण रस का रूप ग्रहण कर लेता है।

उदाहरण—

सब बंधुन को सोच तजि, तजि गुरुकुल को नेह।
हा सुशील सुत! किमि कियो अनत लोक में गेह॥

(हिन्दी रस-गंगाधर)

पुत्र की मृत्यु पर पिता का विलाप—हा, मेरे सुशील

पुत्र ! तुमने अपने सब बंधुओं की चिन्ता और गुरुकुल का स्नेह छोड़कर, इस लोक को त्याग परलोक में अपना घर क्यों बना लिया ?

यहाँ शोक स्थायी भाव है। पिता आश्रय है। पुत्र विषय (आलंबन) है। पिता के उद्‌गार अनुभाव हैं। दीनता, मोह, विषाद, जड़ता आदि संचारी भाव हैं।

इसी प्रकार—

अभी तो मुकुट बँधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ।
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुंबक शून्य कपोल।
हाय रुक गया यहीं संसार
बना सिन्दूर अंगार॥

—सुमित्रानंदन पंत : **पल्लव**

यह पद्य भी करुण रस का उदाहरण है।

वीर रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) उत्साह नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह वीर रस का रूप ग्रहण कर लेता है।

उदाहरण—

'हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, देवेन्द्र भी आकर अड़ें,
है खेल क्षत्रिय बालकों का व्यूह-भेदन कर लड़ें।
मैं सत्य कहता हूँ सखे ! सुकुमार मत जानो मुझे,
यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा मानो मुझे।'

—मैथिलीशरण गुप्त : **जयद्रथवध**

यहाँ उत्साह स्थायी भाव है। अभिमन्यु आश्रय है। द्रोणाचार्य आदि क्षत्रिय आलंबन हैं। अभिमन्यु के वचन अनुभाव हैं। रोमांच, उत्सुकता, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

रौद्र रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) क्रोध नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह रौद्र रस का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरण—

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूलकर करतल-युगल मलने लगे॥
'संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े।'
करते हुए यह घोषणा वे हो गए उठ कर खड़े॥
उस काल मारे क्रोध के तन काँपने उनका लगा,
मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा।

—मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथवध

यहाँ क्रोध स्थायी भाव है। अर्जुन आश्रय है। शत्रु आलंबन है। क्रोधपूर्ण घोषणा, शरीर काँपना आदि अनुभाव हैं। आवेग, चपलता, श्रम, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

भयानक रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) भय नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह भयानक रस का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरण—

नभ ते झपटत बाज लखि, भूल्यो सकल प्रपंच।
कंपित तन व्याकुल नयन, लावक हिल्यो न रंच॥

आकाश से झपटते हुए बाज को देख कर बेचारा लावा पक्षी सुध-बुध खो बैठा। उसका शरीर काँपने लगा और नेत्रों की ज्योति मंद पड़ गई।

यहाँ भय स्थायी भाव है। लावा पक्षी आश्रय है। बाज आलंबन है। बाज का झपटना उद्दीपन विभाव है।

शरीर का काँपना, नेत्रों की व्याकुलता आदि अनुभाव हैं। दैन्य, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

बीभत्स रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) जुगुप्सा (घृणा) नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह बीभत्स रस का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरण—

कोउ अँतड़िनि की पहिरि माल इतरात दिखावत।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत॥
कोउ मुंडनि लै मानि मोद कंदुक लौं डारत।
कोउ रुंडनि पै बैठि करेजौ फारि निकारत॥

—रत्नाकर : हरिश्चंद्र

यहाँ जुगुत्सा (घृणा) स्थायी भाव है। श्मशान का दृश्य आलंबन है। अँतड़ी की माला पहनकर इतराना, चर्बी शरीर पर पोतना, नर-मुंडों को गेंद की तरह उछालना और धड़ पर बैठकर कलेजा फाड़कर निकालना उद्दीपन विभाव हैं। निर्वेद, ग्लानि, दीनता आदि संचारी भाव हैं।

अद्भुत रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) विस्मय नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह अद्भुत रस का रूप ग्रहण कर लेता है।

उदाहरण—

अखिल भुवन चर-अचर सब हरि-मुख में लखि मातु।
चकित भई गद्गद् बचन, विकसित दृग पुलकातु॥

(काव्यकल्पद्रुम)

भगवान कृष्ण के मुख में सारे भुवनों का दर्शन कर यशोदा आश्चर्यचकित हो गई।

यहाँ विस्मय स्थायी भाव है। श्रीकृष्ण का मुख आलंबन है। मुख में भुवनों का दीखना उद्दीपन विभाव है। नेत्र-विकास, गद्गद् स्वर, रोमांच आदि अनुभाव हैं। त्रास, दैन्य आदि संचारी भाव हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भक्त कवियों ने ईश्वर के विराट रूप का जो वर्णन किया है, वह भी प्रायः अद्भुत रस का ही विषय है। इसी प्रकार संतों की आध्यात्मिक अनुभूति को प्रकट करनेवाली उलटबाँसियाँ भी अद्भुत रस के उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए कबीर की एक उलटबाँसी यहाँ दी जाती है—

एक अचंभा देखा रे भाई।
ठाढ़ा सिंह चरावै गाई॥
पहिले पूत पीछे भई माई।
चेला कै गुरु लागे पाई॥
बैलहिं डारि गूँनि घरि आई।
कुत्ता कूँ ले गई बिलाई।
तलि करि साखा ऊपरि करि मूल।
बहुत भाँति जड़ लागे फूल॥
कहै कबीर या पद को बूझै।
ताकूँ तीन्यूँ त्रिभुवन सूझै॥

यहाँ विस्मय स्थायी भाव है। कवि द्वारा वर्णित उलटा व्यापार आलंबन है। उसका विचित्र कार्य-कलाप उद्दीपन विभाव है। मोह, चिन्ता, तर्क आदि संचारी भाव हैं। स्तब्ध रह जाना आदि अनुभाव हैं।

शांत रस

(सहृदय के हृदय में स्थित) निर्वेद नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह शांत रस का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरण—

सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबही ते।
अंतहि तोहि तजेंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥
अब नाथहि अनुराग जागु जड़, त्यागु दुरासा जा ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते॥

—तुलसी : **विनय-पत्रिका**

हे मूर्ख! सुत, नारी आदि सभी स्वार्थी हैं। ये तुझे अंत में छोड़ देंगे। तू क्यों उन्हें नहीं छोड़ देता? अब तो परमात्मा से ही अनुराग उत्पन्न कर। हृदय से दुराशाओं को निकाल दे। भला विषय-भोग रूपी घी से भी कहीं काम-रूपी अग्नि बुझ सकती है!

यहाँ निर्वेद स्थायी भाव है। अनित्य संसार के सभी सुख-साधन—पुत्र, पत्नी आदि—आलंबन हैं। इन्हें छोड़ देने का कथन अनुभाव है। धृति, मति, विमर्ष आदि संचारी भाव हैं।

वत्सल रस

(सहृदय के हृदय में वासना रूप से स्थित) वात्सल्य नामक स्थायी भाव का जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयोग हो जाता है तो वह वत्सल रस का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरण—

'माँ'—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी उस कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी।
लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाहें आकर लिपट गईं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी॥

—प्रसाद : **कामायनी**

यहाँ वात्सल्य स्थायी भाव है। श्रद्धा आश्रय है और बालक मानव आलंबन है। 'माँ' कहकर पुकारना, किलकारी मारना आदि उद्दीपन विभाव हैं। गोद में लेना और प्यार करना अनुभाव हैं। औत्सुक्य, हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

वत्सल का एक और उदाहरण लीजिए—

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै॥
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावै॥

—सूरदास : सूरसागर

इस पद्य में वात्सल्य स्थायी भाव है। यशोदा आश्रय है, बाल कृष्ण आलंबन है। कृष्ण की नींद को बुलाना, उनका पलकें मूँदना, व्याकुल हो उठना आदि उद्दीपन विभाव हैं। यशोदा की क्रियाएँ अनुभाव हैं। शंका, हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

अध्याय-५

□ □ □ □ □

गुण तथा रीति

पीछे हमने पढ़ा है कि कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि से हमें जो आनंद प्राप्त होता है वह रस कहलाता है। रस के साथ एक काव्य-तत्त्व सदा रहता है, वह है गुण। जिस प्रकार अग्नि के साथ उष्णता सदा रहती है उसी प्रकार रस के साथ गुण सदा रहते हैं। (अथवा जिस प्रकार शूरता, उदारता आदि गुण आत्मा के धर्म हैं, अर्थात् उससे संबंधित माने जाते हैं, उसी प्रकार गुण भी रस के धर्म माने जाते हैं।)

गुण

संक्षेप में गुण का लक्षण है—जो रस के नित्य धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं।

गुण तीन हैं—माधुर्य, ओज और प्रसाद।

माधुर्य

काव्य के जिस गुण विशेष के कारण सहृदय का चित्त द्रवित हो जाता है, उसे माधुर्य कहते हैं।

यह गुण शृंगार, करुण और शांत रसों में रहता है। इस गुण में कोमल वर्णों का प्रयोग रहता है और समास का प्रयोग बहुत ही कम रहता है।

उदाहरण—

कुंदन को रंग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु बिलासन की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लखै मुसकानी मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरि निकरै-सी निकाई॥

—मतिराम

यह शृंगार रस का उदाहरण है तथा इसमें कोमल वर्णों की अधिकता के कारण माधुर्य गुण है।

ओज

काव्य के जिस गुण विशेष के कारण सहृदय का चित्त दीप्त हो जाता है, अर्थात् सहृदय के चित्त में तेज का संचार हो जाता है, उसे ओज गुण कहते हैं।

यह गुण वीर, रौद्र और बीभत्स रसों में रहता है। इसमें कठोर वर्णों का प्रयोग होता है, जैसे ट, ठ, ड, ढ आदि। इसमें समास प्रायः बड़े-बड़े होते हैं।

उदाहरण—

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि।
जै सुरक्त जै रक्त-बीज बिड्डाल-बिहंडिनि॥
जै जै निसुंभ सुंभ छलनि, भनि भूषन जै जै भननि।
सरजा समत्थ सिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग-जननि॥

—भूषण : शिवराजभूषण

इस छंद में भूषण द्वारा शिवाजी के लिए चंडी की स्तुति

की गई है । यह वीर रस का उदाहरण है । इसमें संयुक्त वर्णों और 'ड' वर्ण के प्रयोग की अधिकता है, तथा लंबे-लंबे समासों का प्रयोग किया गया है । अतः इसमें ओज गुण है ।

प्रसाद

काव्य के जिस गुण विशेष के कारण सहृदय का चित्त व्याप्त हो जाता है, अर्थात् सहृदय के चित्त में अर्थ पूरे का पूरा रम जाता है, उसे प्रसाद कहते हैं ।

यह गुण उस रचना में माना जाता है जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके सुनने अथवा पढ़ने मात्र से ही अर्थ का बोध हो जाए । यह गुण सभी रसों में रहता है ।

उदाहरण—

पास भी आते हैं जो, उनके हृदयों को 'हितैषी' सदा हर लेते ।
लाख मलीन न क्यों मन हो, उसमें भी बना अपना घर लेते ॥
क्या नर किन्नर वस्तु भला, जब हाथों ही हाथ हरी हर लेते ।
केवल एक सुवास ही से हम विश्व को हैं वश में कर लेते ॥

—हितैषी

इस छंद में 'हितैषी' जी ने फूल के कथन द्वारा प्रेम के महत्त्व को स्पष्ट किया है जो कि पढ़ते ही पाठक के चित्त में रम जाता है ।

रीति

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उक्त तीनों गुणों की रचना के साथ क्रमशः तीन रीतियाँ भी संबंधित हैं, और इस प्रकार वे रस का उपकार करती हैं । रीति का लक्षण है—

जो गुण के आश्रित रहकर रस का उपकार करती है, उसे रीति कहते हैं ।

तीन रीतियों के नाम हैं—वैदर्भी, गौडी और पांचाली।

गुण और रीति में परस्पर सबंध इस प्रकार है—

१. जहाँ माधुर्य गुण की रचना होती है वहाँ वैदर्भी रीति स्वीकार की जाती है।

२. जहाँ ओज गुण की रचना होती है वहाँ गौडी रीति स्वीकार की जाती है।

३. जहाँ प्रसाद गुण की रचना होती है वहाँ पांचाली रीति स्वीकार की जाती है।

इन रीतियों के उदाहरण भी क्रमशः वही हैं जो उक्त तीनों गुणों के दिए गए हैं।

अध्याय-६

□ □ □ □ □ □

अलंकार

काव्य की शोभा बढ़ानेवाले तत्त्व को अलंकार कहते हैं। जिस प्रकार कंगन, कुंडल आदि आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। सामान्य वार्तालाप का काव्य से यह अंतर है कि काव्य में जो वर्णन किया जाता है वह साधारण न होकर चमत्कारपूर्ण होता है।

अलंकार का लक्षण

शब्द और अर्थ के विशेष प्रयोग के कारण काव्य में जो चमत्कार या सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है उसे अलंकार कहते हैं।

अलंकार के प्रकार

अलंकार के मुख्य दो प्रकार हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार।

शब्दालंकार—जिस रचना में शब्दों के कारण चमत्कार होता है वहाँ शब्दालंकार माना जाता है।

अनुप्रास, यमक और श्लेष—ये तीन मुख्य शब्दालंकार हैं।

अनुप्रास : जिस रचना में व्यंजनों की बार-बार आवृत्ति के कारण चमत्कार उत्पन्न हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार माना जाता है।

उदाहरण—

तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचल गति सुरसरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कांत कामिनी कविता॥

—निराला : परिमल

यहाँ तुम और तुंग में 'त' की तथा कांत, कामिनी और कविता में 'क' की आवृत्ति है।

एक दूसरा उदाहरण—

रससिंगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन॥

—बिहारी : सतसई

यमक : जहाँ पर निरर्थक अथवा भिन्न-भिन्न अर्थवाले सार्थक वर्ण-समुदाय का अनेक बार प्रयोग हो वहाँ यमक अलंकार होता है।

उदाहरण—

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कै उर बसी ह्वै उरबसी-समान॥

—बिहारी : सतसई

इस दोहे में 'उरबसी' शब्द तीन बार आया है और तीनों बार उसका अर्थ भिन्न है। प्रथम 'उरबसी' का अर्थ

'आसरा' है, द्वितीय 'उरबसी' का अर्थ 'हृदय में बस गई' है और तृतीय 'उरबसी' का अर्थ 'गले में पहना जानेवाला एक आभूषण' है। इस प्रकार एक ही वर्ण-समुदाय के तीन बार प्रयोग से और तीनों में भिन्न-भिन्न अर्थ होने से यहाँ पर 'यमक' अलंकार है।

श्लेष : जहाँ पर किसी शब्द के एक से अधिक अर्थ निकलते हों वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

उदाहरण—

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यौं न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

—बिहारी : सतसई

बिहारी के इस दोहे में 'वृषभानुजा' शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ है—वृषभानु की पुत्री राधिका और दूसरा अर्थ है—वृषभ की अनुजा—अर्थात् बैल की बहन, अर्थात गाय। इसी प्रकार 'हलधर के बीर' के भी दो अर्थ हैं—एक हलधर अर्थात् श्री कृष्ण के भाई बलराम और दूसरा हलधर—हल को धारण करनेवाला अर्थात् बैल। इन दोनों शब्दों के दो अर्थों से दोहे के अलग-अलग दो अर्थ निकलते हैं, अतः यहाँ श्लेष अलंकार है।

अर्थालंकार—जिस रचना में अर्थ के कारण चमत्कार होता है वहाँ अर्थालंकार माना जाता है।

शब्दालंकार और अर्थालंकार में अंतर

शब्द के कारण चमत्कार होने पर शब्दालंकार माना जाता है और अर्थ के कारण चमत्कार होने पर अर्थालंकार। इसकी पहचान यह है कि जिस रचना में शब्द-

विशेष के स्थान पर समानार्थी शब्द रखने पर चमत्कार समाप्त हो जाए वहाँ शब्दालंकार होता है, किन्तु जहाँ वह चमत्कार समाप्त न हो—ज्यों का त्यों बना रहे, वहाँ अर्थालंकार होता है।

अर्थालंकार के अनेक भेद हैं। यहाँ कुछ मुख्य भेदों का परिचय दिया जा रहा है।

उपमा : अर्थालंकारों में उपमा सबसे प्रधान और अधिक प्रचलित अलंकार है।

जहाँ पर किसी वस्तु की रूप-गुण-संबंधी विशेषता को स्पष्ट करने के लिए किसी दूसरी परिचित वस्तु से उसकी समता प्रकट की जाती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

उपमा के चार अंग हैं—उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण धर्म।

उपमेय—जिस व्यक्ति या वस्तु की समता की जाती है उसे उपमेय कहते हैं। इसे 'विषय' या 'प्रस्तुत' भी कहा जाता है।

उपमान—जिस व्यक्ति या वस्तु से समता की जाती है उसे 'उपमान' कहते हैं। इसे 'विषयी' या 'अप्रस्तुत' भी कहते हैं।

वाचक शब्द—उपमेय और उपमान की समता को प्रकट करने वाले शब्द 'वाचक शब्द' कहलाते हैं। जैसे—सा, इव, सम, समान, सों आदि।

साधारण धर्म—उपमेय और उपमान में जो रूप, गुण और कर्म की समानता दिखाई जाती है, वही 'साधारण धर्म' है।

उदाहरण के लिए 'पीपर-पात सरिस मन डोला' में 'मन' उपमेय है; 'पीपर-पात' उपमान है, 'सरिस' वाचक शब्द है और 'डोला' साधारण धर्म है।

जिस उपमा में ये चारों अंग प्रकट रहते हैं उसे 'पूर्णोपमा' कहते हैं। इन अंगों में से एक या अनेक के लुप्त होने पर 'लुप्तोपमा' होती है।

पूर्णोपमा : जहाँ उपमा के चारों अंग वर्णित रहते हैं, वहाँ पूर्णोपमा होती है।

जैसे—

लोचन कुबलय-से विशाल,
आनन विधु-सा शोभाकर।
चरण कमल-सम कोमल,
लोहित नव पल्लवदल-सम कर॥

यहाँ नेत्र कमल के समान विशाल, मुख चंद्रमा के समान शोभाशाली, चरण कमल के समान कोमल, और हाथ नए पल्लव के समान लाल कहे गए हैं। इस प्रकार उपमा के चारों अंग—उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण धर्म स्पष्ट हैं। अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

लुप्तोपमा : जहाँ उपमा के चार अंगों में से कोई अंग लुप्त रहता है, वहाँ लुप्तोपमा होती है।

उदाहरण—

पड़ी थी बिजली-सी विकराल, लपेटे थे घन जैसे बाल।
कौन छेड़े ये काले साँप, अवनिपति उठे अचानक काँप॥

—मैथिलीशरण गुप्त : **साकेत**

इस पद में कैकेयी के रोष का वर्णन है। पहले चरण में उसे 'बिजली के समान विकराल' कहा गया है। यहाँ

बिजली उपमान है। 'विकराल' समान धर्म है। 'सी' वाचक शब्द है। चूँकि 'कैकेयी' उपमेय का लोप है, इसलिए यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है।

रूपक : जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप हो वहाँ रूपक अलंकार होता है।

उदाहरण—

ऊधो, मेरा हृदयतल था एक उद्यान न्यारा।
शोभा देतीं अमित उसमें कल्पना-क्यारियाँ थीं॥
प्यारे-प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों।
उत्साहों के विपुल विटपी मुग्धकारी महा थे॥

—हरिऔध : **प्रियप्रवास**

इस छंद में हृदयतल पर उद्यान का, कल्पना में क्यारियों का, भावों में फूलों का और उत्साहों में वृक्षों का आरोप है। अतः यहाँ रूपक अलंकार है।

इसी प्रकार नीचे दिए पद्य में भी रूपक अलंकार है—

उदित उदयगिरि-मंच पर रघुवर बालपतंग।
बिकसे संतसरोज सब हरषे लोचन-भृंग॥

—तुलसी : **रामचरितमानस**
(**काव्य-संकलन**, पृ० ३०)

उत्प्रेक्षा—जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

उत्प्रेक्षा में प्रायः 'जनु', 'जानो', 'मानो' आदि वाचक शब्द के रूप में आते हैं।

उदाहरण —

लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥

—तुलसी : **रामचरितमानस**

यहाँ पर लताओं के बने भवन से निकलते हुए राम

और लक्ष्मण दोनों भाइयों के संबंध में कहा गया है कि वे ऐसे लगते हैं मानो बादलों के बीच से दो निर्मल चंद्रमा निकल आए हों।

एक दूसरा उदाहरण—

जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े।
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े॥

यहाँ पर नेत्रों में नीलम-जड़े हीरों की कल्पना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

इसी प्रकार—

प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिजु-मीन-जुग जनु बिधमंडल डोल॥

—तुलसी : **रामचरितमानस**
(काव्य-संकलन, पृ० ३१)

इस पद्य में भी उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अपह्नुति : यदि उपमेय का निषेध कर उसमें उपमान का आरोप किया जाए तो अपह्नुति अलंकार होता है।

अपह्नुति का अर्थ है छिपाना, निषेध करना। इस अलंकार में प्रायः निषेध करके आरोप करते हैं।

उदाहरण—

कर अजब आसमान की रंगत
ये सितारे न रंग लाते हैं।
अनगिनत-हाथ-पाँव वाले के
नख जगा ज्योति जगमगाते हैं॥

—हरिऔध : **हरिऔध हजारा**

यहाँ पर आसमान के तारों का निषेध करके उनमें परमात्मा के नखों का आरोप किया गया है। अतः यहाँ

अपह्नुति अलंकार है।

भ्रम या भ्रांतिमान : जहाँ प्रस्तुत को देखने से सादृश्य के कारण किसी दूसरी वस्तु का भ्रम हो जाए वहाँ भ्रम या भ्रांतिमान अलंकार होता है।

उदाहरण—

नाक का मोती अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रांति से।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?

—मैथिलीशरण गुप्त : **साकेत**

यहाँ उर्मिला की नुकीली नाक देखकर और उसमें पहने हुए मोती को अनार का दाना समझकर उसका पिंजरे में पला हुआ तोता यह समझता है कि यह कोई दूसरा तोता है, जो अपनी चोंच में अनार का दाना दबाए हुए है। अतएव यहाँ भ्रम या भ्रांतिमान अलंकार है।

एक और उदाहरण—

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह, हरषि उठि कर गहेउ॥

—तुलसी : **रामचरितमानस**

संदेह : किसी वस्तु को देखकर जहाँ साम्य के कारण उसमें किसी दूसरी वस्तु का संदेह हो जाता है, वहाँ संदेह अलंकार माना गया है।

सामान्यतः इसके वाचक शब्द 'या', 'अथवा', 'धौं', 'किधौं', 'किंवा' आदि होते हैं।

जैसे—

इन दूबों के टुनगों पर
किसने मोती बिखराए ?
या तारे नील गगन के
स्वच्छंद विचरने आए ?
या बँधी हुई हैं अरि कीं
जिसके कर में हथकड़ियाँ
उस पराधीन जननी की
बिखरीं आँसू की लड़ियाँ ॥

इस पद्य में दूबों की पत्तियों पर बिखरे हुए ओस-कणों में मोतियों, तारों और आँसुओं का संदेह प्रकट किया गया है। अतः यहाँ संदेह अलंकार है।

संदेह और भ्रांतिमान में अंतर यह है कि संदेह अलंकार में अनिश्चय रहता है, परंतु भ्रांतिमान में किसी वस्तु में दूसरी वस्तु का झूठा निश्चय हो जाता है।

अतिशयोक्ति : जहाँ लोकसीमा का अतिक्रमण करके किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जाता है, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

वह शर इधर गांडीव-गुण से भिन्न जैसे ही हुआ।
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ ॥

—मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथवध

इतनी अधिक तीव्रता दिखाना कि तीर के छूटते ही सिर कट गया—लोकसीमा का उल्लंघन है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

इसी प्रकार—

पड़ी अचानक नदी अपार, घोड़ा कैसे उतरे पार।
राणा ने सोचा इस पार, तब तक चेतक था उस पार ॥

यहाँ भी अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्यतिरेक : उपमेय की उपमान से अधिकता या न्यूनता सूचित करनेवाले अलंकार को व्यतिरेक कहते हैं।

उदाहरण—

संत शैल सम उच्च हैं किन्तु प्रकृति सुकुमार।

संतों का उत्कर्ष दिखाया गया है। अतः व्यतिरेक अलंकार है।

अन्य उदाहरण—

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ, किन्तु सुरसरिता कहाँ, सरयू कहाँ?
वह मरों को मात्र पार उतारती, यह यहीं से जीवितों को तारती!

—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत

यहाँ सरयू नदी (उपमेय) को गंगा नदी (उपमान) की अपेक्षा उत्तम बताया गया है।

इसी प्रकार—

जनमु सिन्धु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चंदु बापुरो रंक॥

—तुलसी : रामचरितमानस

इस पद्य में भी व्यतिरेक अलंकार है।

विभावना : जहाँ कारण के बिना या कारण के विपरीत कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाए, वहाँ विभावना अलंकार होता है।

उदाहरण—

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

—तुलसी : रामचरितमानस

परमात्मा के विषय में कहा गया है कि वह पैरों के बिना चलते हैं, कानों के बिना सुनते हैं, आदि। इस प्रकार यहाँ कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति बताई गई है। अतः विभावना अलंकार है। इसी प्रकार निम्नोक्त पद्य भी विभावना अलंकार का उदाहरण है—

साहितनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन।

—भूषण : शिवराज भूषण

विशेषोक्ति : जहाँ कारण के उपस्थित होने पर भी कार्य नहीं होता, वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

नेहु न नैननि कौं कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय॥

—बिहारी : सतसई

आँखों में नीर (अश्रु) भरे रहने पर भी उनकी प्यास नहीं बुझती—कारण के होने पर भी कार्य नहीं हो रहा। अतः यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है।

इसी प्रकार—

अब छुटता नहीं छुड़ाए, रँग गया हृदय है ऐसा।
आँसू से धला निखरता, यह रंग अनोखा कैसा!

—प्रसाद : आँसू

असंगति : जब कारण कहीं एक स्थान में और कार्य कहीं दूसरे स्थान में वर्णित हो, तब असंगति अलंकार होता है।

उदाहरण—

विषयी नृपति कुसंग सों पथ्य-विमुख ह्वै आपु।
करत लोक अपवाद जुर चढ़ि सचिवन संतापु॥

(विषयी राजा कुसंग में पड़कर पथ्य से विमुख अर्थात आचार-विरुद्ध कार्य तो स्वयं करते हैं, किन्तु लोक-निन्दा रूपी ज्वर मंत्रियों को चढ़ता है और उन्हें संतप्त करता है।)

जो पथ्य-विमुख कार्य करते हैं, ज्वरग्रस्त भी उन्हीं को होना चाहिए। किन्तु यहाँ बताया गया है कि ऐसा कार्य करते तो हैं राजा, पर उसका फल भोगते हैं मंत्री। अतः यहाँ असंगति अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास : जहाँ सामान्य कथन का विशेष कथन के द्वारा और विशेष कथन का सामान्य कथन के द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

उदाहरण—

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारै गेह तें, कस न भेद कहि देइ॥

—रहीम

यहाँ पहली पंक्ति में जो सामान्य कथन है उसी का समर्थन दूसरी पंक्ति में विशेष कथन द्वारा किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

इसी प्रकार—

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद बड़ाई पाइ।
कहते धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यो न जाइ॥

—बिहारी : सतसई (काव्य-संकलन, पृ० १३६)

इस पद्य में भी विशेष कथन द्वारा सामान्य कथन का समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

दृष्टांत : जहाँ किसी बात को स्पष्ट करने के लिए

साम्यमूलक उदाहरण प्रस्तुत किया जाए वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है। इस अलंकार में पहली और दूसरी उक्ति में उपमेय-उपमान-संबंध रहता है।

उदाहरण—

भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥

—तुलसी : रामचरितमानस

इस पद्य में 'यदि भरत को ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद भी मिल जाए' यह उक्ति उपमेय है, और इसे स्पष्ट करने के लिए दिया गया साम्यमूलक यह उदाहरण, 'क्या काँजी (खट्टा पेय पदार्थ) की बूँदों से भी कभी क्षीर सागर फट सकता है?' उपमान है।

इस प्रकार उक्त पद्य में दृष्टांत अलंकार है।

विरोधाभास : जहाँ किसी पदार्थ, गुण या क्रिया में वास्तविक विरोध न होने पर भी विरोध का वर्णन हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

उदाहरण—

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे, जे बूड़े सब अंग॥

—बिहारी : सतसई

जो लोग तंत्री (सितार) नामक वाद्ययंत्र के नाद में, कविता के रस में, रसभरे संगीत में और प्रेम रंग में नहीं डूबते वे तो डूब जाते हैं, किन्तु जो इनमें पूरे डूब जाते हैं वे तैर जाते हैं।

यहाँ 'न डूबना' और 'डूबना' तथा 'तैरना' क्रियाओं का

परस्पर विरोध प्रतीत होता है, परंतु वास्तव में विरोध है नहीं।

इसी प्रकार—

शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का।
यह व्यर्थ साँस चल-चल कर, करती है काम अनिल का॥
—प्रसाद : आँसू

इस पद्य के भी रेखांकित अंशों में विरोधाभास अलंकार है।

दीपक : जहाँ प्रस्तुतों और अप्रस्तुतों का एक धर्म से संबंध बताया जाए वहाँ दीपक अलंकार होता है।

उदाहरण—

काहुके कैहूं घटाए घटै नहिं सागर अरु गुन-आगर प्रानी।

इस पंक्ति में सागर और गुण-संपन्न व्यक्तियों का एक ही धर्म प्रकट किया गया है। अतः यहाँ दीपक अलंकार है।

अन्योक्ति : जहाँ किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु को लक्ष्य में रखकर कोई बात किसी दूसरे के लिए कही जाती है, वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—

स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि बिहंग, बिचारि।
बाज, पराए पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि॥
—बिहारी : सतसई (काव्य-संकलन, पृ० १३६)

हे बाज पक्षी! तू दूसरों के हाथ में पड़कर पक्षियों को मत मार। इससे तेरा न तो कोई स्वार्थ सिद्ध होता है और न तुझे पुण्य मिलता है। तेरा यह श्रम व्यर्थ ही है।

बिहारी कवि का बाज के प्रति कहा गया यह कथन संभवतः मिर्जा राजा जयसिंह के लिए कहा गया है, जो औरंगजेब की ओर से हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध करते थे। अतः यहाँ अन्योक्ति अलंकार है।

हिन्दी-साहित्य में गिरिधर कविराय और दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। गिरि जी की एक कुंडलिया प्रस्तुत है—

डाली चंदन की न क्यों पाली माली कूर।
मतवाली मति तब भई, सींचत बैर बबूर॥
सींचत बैर बबूर, दुःखद कंटक हैं ताके।
सेवत क्यों नहिं अंध, गंध मुदकर वर जाके॥
बरनै 'दीनदयाल' सबै श्रम जैहै खाली।
पालत काहै न ताप-समन चंदन की डाली॥

—दीनदयाल गिरि

अध्याय-७

□ □ □ □ □ □ □

छंद

छंद कविता का आवश्यक अंग माना जाता है। निश्चित मात्रा या वर्ण की गणना या क्रम के आधार पर जहाँ काव्य की रचना की जाती है वहाँ छंद होता है और ऐसी रचना को पद्य या कविता कहते हैं।

छंदयुक्त रचनाओं में एक विशेष प्रकार की गति और लय का संचार रहता है। इसलिए पढ़ने और सुननेवालों पर गद्यबद्ध काव्य की अपेक्षा पद्यबद्ध काव्य का विशेष प्रभाव पड़ता है। ऐसे काव्य में संगीत की विशेषता रहती है। अतः इसे हम बार-बार सुनना या पढ़ना चाहते हैं, और इस कारण छंदयुक्त पंक्तियाँ सुगमता से याद की जा सकती हैं। इस प्रकार कविता में छंद का अनेक दृष्टियों से विशेष महत्त्व है।

छंद की रचना

पाद या चरण—एक छंद में प्रायः चार पाद या चरण होते हैं जो कि सामान्यतः चार पंक्तियों में लिखे जाते

हैं। इनमें से पहले और तीसरे पाद को विषम पाद कहते हैं, तथा दूसरे और चौथे को सम पाद।

वर्ण और मात्रा—छंद के प्रत्येक चरण को वर्ण अथवा मात्रा की गणना के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है।

वर्णों की गणना करते समय वर्ण चाहे लघु (ह्रस्व) हो अथवा दीर्घ (गुरु) हो, उसे एक ही माना जाता है।

उदाहरणार्थ 'कल,' 'काल' और 'काला'—इन तीनों शब्दों में दो-दो वर्ण हैं।

मात्राओं की गणना करते समय लघु स्वर की एक मात्रा मानी जाती है और गुरु स्वर की दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

उदाहरणार्थ 'क', 'का', 'कल', 'काल' और 'काला,' में क्रमश: एक, दो, दो, तीन और चार मात्राएँ हैं।

लघु वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है वही मात्रा की इकाई है।

गति

किसी छंद को पढ़ते समय हम एक प्रकार के प्रवाह का अनुभव करते हैं, इसे गति कहते हैं।

यति

किसी छंद को पढ़ते समय जहाँ हम रुकते या विराम लेते हैं, उसे यति कहते हैं।

उदाहरणार्थ—

मेरे प्यारे, कुँवर अब भी, क्यों नहीं गेह आए।

—हरिऔध : **प्रियप्रवास**

इस पाद के बीच में दो स्थानों पर यति है जिसे अर्द्ध-विराम' के चिह्न द्वारा दिखाया गया है।

यति के नियम का पालन केवल बड़े छंदों में किया जाता है, छोटे छंदों में नहीं।

छंद के प्रकार

वर्ण और मात्रा के आधार पर छंद के दो प्रकार माने जाते हैं—वर्णिक और मात्रिक।

वर्णिक छंद

जिन छंदों की व्यवस्था वर्णों की गणना के आधार पर की जाती है उन्हें वर्णिक छंद कहते हैं। इनका दूसरा नाम 'वृत्त' भी है।

गण—वर्णिक छंदों में वर्णों की गणना 'गण' के क्रमानुसार की जाती है।

एक गण में तीन वर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ 'सड़क'—'।।।' (तीन लघु)—यह एक गण है। 'पुकार'—'।ऽ।' (लघु-गुरु-लघु) यह भी एक गण है।

इस प्रकार गण आठ माने गए हैं। यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण।

इन गणों के स्वरूप को समझने के लिए यह सूत्र पढ़िए—

यमाताराजभानसलगा

इस सूत्र से उक्त आठों गणों का स्वरूप ज्ञात हो जाएगा। उदाहरणार्थ यगण का स्वरूप जानने के लिए 'यमाता' के तीन वर्ण लीजिए, मगण का स्वरूप जानने के लिए 'मातारा' लीजिए, तगण के लिए 'ताराज' आदि।

इस प्रकार आठों गणों का स्वरूप इस प्रकार होगा—

यमाता	—	।ऽऽ	लघु गुरु गुरु	—	यगण
मातारा	—	ऽऽऽ	गुरु गुरु गुरु	—	मगण
ताराज	—	ऽऽ।	गुरु गुरु लघु	—	तगण
राजभा	—	ऽ।ऽ	गुरु लघु गुरु	—	रगण
जभान	—	।ऽ।	लघु गुरु लघु	—	जगण
भानस	—	ऽ।।	गुरु लघु लघु	—	भगण
नसल	—	।।।	लघु लघु लघु	—	नगण
सलगा	—	।।ऽ	लघु लघु गुरु	—	सगण

वर्णिक छंद के प्रकार

वर्णिक छंद के तीन मुख्य प्रकार होते हैं—सम, अर्द्धसम और विषम। सम छंदों के चारों चरणों में समान वर्ण होते हैं। अर्द्धसम छंदों में पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरणों में समान वर्ण होते हैं, और विषम छंद वे कहलाते हैं जिनके चारों चरणों में भिन्न-भिन्न वर्ण-संख्या होती है।

कुछ प्रमुख वर्णिक छंद

कुछ प्रमुख वर्णिक छंदों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत हैं—

इंद्रवज्रा : इंद्रवज्रा छंद के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण 'त त ज ग ग' अर्थात् दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से रहत हैं।

उदाहरण—

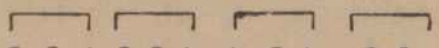

मैं जो नया ग्रंथ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र-सा है।
देखूँ उसे मैं नित नेम से ही,
मानो मिला मित्र मुझे पुराना।

—हरिऔध

इस पद्य के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से ग्यारह वर्ण हैं।

उपेन्द्रवज्रा : उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण 'ज त ज ग ग' अर्थात् जगण, तगण, जगण और दो गुरु के क्रम से होते हैं।

उदाहरण—

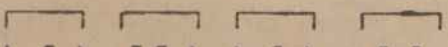

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै,
परंतु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

—हरिऔध

इस पद्य के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण हैं जो जगण, तगण, जगण, और दो गुरु के क्रम से हैं।

भुजंगप्रयात : यह बारह वर्णों का छंद है और प्रत्येक चरण में चार यगण रहते हैं।

उदाहरण—

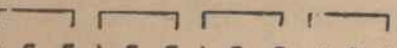

कहूं किन्नरी किन्नरी लै बजावैं
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं

कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावें
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावें

—केशव : रामचंद्रिका

इसके प्रत्येक चरण में चार तगण अर्थात् बारह वर्ण हैं।

वंशस्थ—इस छंद के प्रत्येक चरण में 'ज त ज र' अर्थात् जगण, तगण, जगण, रगण इस क्रम से बारह वर्ण रहते हैं।

उदाहरण—

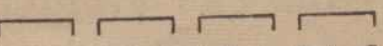

ललामता कोमलता स्वकीय से,
अनूपता पल्लव पत्रपंज से।
सलोचनों को करती प्रलब्ध थी,
प्रलोभनीया लतिका-लवंग की॥

—हरिऔध : प्रियप्रवास

द्रुतविलंबित : इसमें 'न भ भ र' अर्थात् नगण, दो भगण और रगण क्रम से होते हैं।

उदाहरण—

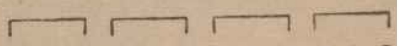

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

—हरिऔध : प्रियप्रवास

वसंततिलका : इसके प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण होते हैं, जिनका क्रम 'त भ ज ज ग ग' अर्थात तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु—इस रूप में होता है।

उदाहरण—

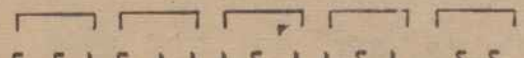

S S I S I I I S I I S I S S

कुंजें वही, थल वही, यमुना वही है,
बलें वही, वन वही, विटपी वही है।
हैं पुष्प-पल्लव वही, ब्रज भी वही है,
यों किन्तु श्याम बिन न वही जनाते ॥

—हरिऔध : प्रियप्रवास

मालिनी : इसके प्रत्येक चरण में पंद्रह वर्ण होते हैं और गणों का क्रम 'न न म य य' अर्थात् दो नगण, मगण और दो यगण के अनुसार रहता है।

उदाहरण—

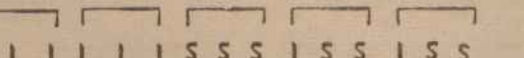

I I I I I I S S S I S S I S S

पल- पल जिसके मैं पंथ को देखती थी,
निशदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला
वह नव-नलिनी-से नैनवाला कहाँ है?

—हरिऔध : प्रियप्रवास

मंदाक्रांता : मंदाक्रांता का प्रत्येक चरण १७ वर्णों का होता है। इनमें 'म भ न त त ग ग' अर्थात् मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

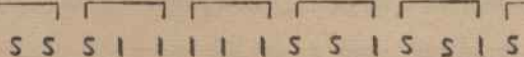

S S S S I I I I S S I S S I S S

फूलों पत्तों, सकल तरुओं, औ लता-बेलियों से,
आवासों से, ब्रज-अवनि से, पंथ की रेणुओं से
होती सी थी, यह ध्वनि सदा, कुंज से काननों से,
मेरे प्यारे, कुँवर अब भी, क्यों नहीं गेह आए ॥

—हरिऔध : प्रियप्रवास

शिखरिणी : शिखरिणी छंद में सत्रह वर्ण होते हैं। इसमें ६ और ११ वर्णों पर यति होती है। वर्णों का विन्यास 'य म न स भ ल ग' अर्थात् यगण, मगण, नगण सगण, भगण, लघु और गुरु के क्रम से होता है।

उदाहरण—

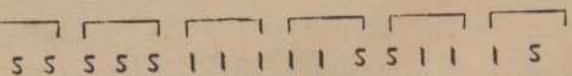

अनूठी आभा से, सरस- सुषमा से सुरस से,
बना जो देती थी, बहु गुणमयी भू विपिन को।
निराले फूलों की, विविध दलवाली अनुपमा,
जड़ी बूटी हो हो, बहु फलवती थीं विलसती ॥

—हरिऔध : **प्रियप्रवास**

शार्दूलविक्रीड़ित : शार्दूलविक्रीड़ित उन्नीस वर्णों का वृत्त होता है और बारह और सात वर्णों पर यति होती है। इसके अंतर्गत क्रमशः 'म स ज स त त ग' अर्थात् मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण के बाद एक गुरु होता है।

उदाहरण—

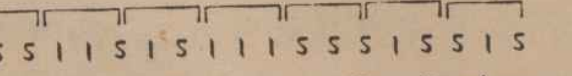

जंबू अंब कदंब निम्ब फलसा जंबीर औ आँवला,
लीची दाड़िम नारिकेल इमिली और शिशपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी,
श्रेणीबद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े ॥

—हरिऔध : **प्रियप्रवास**

सवैया : बाईस से लेकर छब्बीस वर्णों तक के वृत्त 'सवैया' कहलाते हैं। इस छंद के मुख्य भेद मदिरा, चकोर मत्तगयंद, अरसात, किरीट, दुर्मिल, सुंदरी आदि होते हैं।

ये सवैया छंद प्रायः सात या आठ गणों से बनते हैं।

यहाँ पर 'दुर्मिल' सवैया का उदाहरण दिया जा रहा है, जिसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं। इसका दूसरा नाम 'चंद्रकला' भी है। उदाहरण इस प्रकार है—

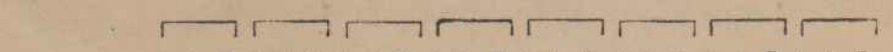

तड़पैं तड़िता चहुँ ओरन ते, छिति छाइ समीरन की लहरैं,
मदमाते महा गिरि-शृंगन पै, गन मंजु मयूरन के कहरैं।
इनकी करनी बरनी न परै, मगरूर गुमानन सों गहरैं,
घन ये नभ-मंडल में छहरैं, घहरैं कहुँ जाय कहूँ ठहरैं॥

दंडक : छब्बीस से अधिक वर्णोंवाले छंद 'दंडक' कहलाते हैं। इन छंदों में 'घनाक्षरी' विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

घनाक्षरी में बत्तीस या तैंतीस वर्ण होते हैं। बत्तीस वर्णों का छंद 'रूपघनाक्षरी' और तैंतीस वर्णों का छंद 'देवघनाक्षरी' कहलाता है।

नीचे 'रूपघनाक्षरी' का एक उदाहरण दिया जाता है, जिसमें बत्तीस वर्ण हैं और सोलह-सोलह वर्णों पर विराम है। इसके प्रत्येक चरण के अंत में प्रायः गुरु, लघु रहता है। उदाहरण इस प्रकार है—

सुरही के भार सूध सबद सुकीरन के,
मंदरिन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
'द्विजदेव' त्यों ही मधु-भारन अपारनी सों,
नेकु झुकि भूमि रहे मोगरे मरुअ दौन॥
खोलि इन नैननि निहारौं तो निहारौं कहा,
सुषमा अभूत छाइ रही प्रति भौन-भौन।
चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद,
गंध ही के भारन बहुत मंद-मंद पौन॥

—द्विजदेव

हिन्दी-साहित्य में दंडक छंदों के अंतर्गत 'कवित्त' या 'मनहरन' का बहुत प्रयोग हुआ है। इसके प्रत्येक चरण में इकतीस वर्ण होते हैं और सोलह और पंद्रह वर्णों पर विराम होता है। चरण के अंत में गुरु रहता है। जैसे—

झहरि-झहरि झीनी बूंद हैं परति मानो,
घहरि-घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मों सो चलौ झूलिबे को आज,
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन में॥
चाहती उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन में॥
आँखि खोलि देखौं तौ न घन हैं, न घनस्याम,
वेई छाई बूंदें मेरे आँसू ह्वै दृगन में॥

—देव

मात्रिक छंद

जिन छंदों की व्यवस्था मात्राओं की गणना के आधार पर की जाती है उन्हें मात्रिक छंद कहते हैं। इनका दूसरा नाम 'जाति' है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मात्रिक छंदों के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या तो नियत रहती है, पर वर्णों की संख्या प्रायः नियत नहीं रह पाती।

मात्रिक छंद के प्रकार

वर्णिक छंद के समान मात्रिक छंद भी तीन प्रकार के होते हैं—सम, अर्द्धसम और विषम।

कुछ प्रमुख मात्रिक छंद

सम मात्रिक छंद

चौपाई : चौपाई के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ

होती हैं। इसके चरण के अंत में जगण और तगण का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

उदाहरण—

ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रणधीरा, मनहुँ बीर रस धरे सरीरा॥

—तुलसी : **रामचरितमानस**

इस पद्य के प्रत्येक चरण में १६,१६ मात्राएँ हैं। अतः यहाँ चौपाई छंद है।

रोला : रोला छंद के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं। इसमें ११ और १३ मात्राओं पर विराम होता है।

उदाहरण—

। । ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ । । ऽ ऽ । ।

नव उज्जल जलधार, हार हीरक-सी सोहति,
बिच-बिच छहरति बूँद, मध्य मुक्ता-मनि पोहति।
लोल लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत,
जिमि नर गन मन विविध, मनोरथ करत मिटावत॥

—भारतेन्दु हरिश्चंद्र : **सत्य हरिश्चंद्र**

इस पद्य के प्रत्येक चरण में ११ और १३ मात्राओं पर विराम है—कुल २४ मात्राएँ हैं। अतः रोला छंद है।

हरिगीतिका : हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में अट्ठाइस मात्राएँ होती हैं तथा सोलह और बारह मात्राओं पर विराम होता है। इस छंद के प्रत्येक चरण के अंत में रगण (ऽ।ऽ) अथवा गुरु-लघु-गुरु आना आवश्यक है। जैसे—

। । ऽ। ऽऽ ऽ ।ऽ ।।।। ।ऽ ऽऽ ।ऽ

खग-वृंद सोता है अतः कल-कल नहीं होता वहाँ,
बस मंद मारुत का गमन ही मौन है खोता जहाँ।
इस भाँति धीरे से परस्पर, कह सजगता की कथा,
यों दीखते हैं वृक्ष ये, हों विश्व के प्रहरी यथा॥

—हरिऔध : प्रियप्रवास

वीर (आल्हा) : वीर छंद के प्रत्येक चरण में इकतीस मात्राएँ होती हैं तथा सोलह और पंद्रह पर विराम होता है। प्रत्येक चरण के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आवश्यक है।

उदाहरण—

।। ।ऽ। ऽऽ ऽ।। ऽ ऽ। ।ऽ ऽ ।।।।ऽ।

उस असीम नीले अंचल में, देख किसी की मृदु मुसकान,
मानो हँसी हिमालय की है, फूट चली करती कल गान।
शिला-संधियों से टकरा कर, पवन भर रहा था गुंजार,
उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का, करता चारण सदृश प्रचार॥

—प्रसाद : कामायनी

अर्द्धसम मात्रिक छंद

दोहा : दोहा छंद के पहले और तीसरे चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों के अंत में गुरु-लघु होना चाहिए तथा विषम चरणों के प्रारंभ में जगण नहीं आना चाहिए।

उदाहरण—

ऽ ।ऽ। ऽ।। ।।। ऽ ।। ।।। ।ऽ।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

—रहीम

इस पद्य के पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ

और दूसरे और चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ हैं। अतः यहाँ दोहा छंद है।

सोरठा : सोरठा छंद दोहा छंद का उलटा है। इस छंद के प्रथम और तृतीय चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। पहले और तीसरे चरण के अंत में गुरु-लघु आते हैं तथा तुक भी मिलती है।

उदाहरण—

ऽ।। ।।।।ऽ। ।ऽऽ। ।।ऽ। ।।

बंदउँ गुरु-पद-कंज, कृपा-सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर॥

—तुलसी : **रामचरितमानस**

विषम मात्रिक छंद

हिन्दी के प्राचीन छंदों में छप्पय और कुंडलिया विषम छंद माने गए हैं। ये दोनों छंद दो अन्य छंदों के मेल से बनते हैं।

छप्पय : छप्पय छः चरणों का छंद है। इसके पहले चार चरणों में रोला छंद और अंतिम दो चरणों में उल्लाला छँद रहता है। 'रोला' छंद के प्रत्येक चरण में ग्यारह और तेरह के विराम से चौबीस मात्राएँ होती हैं, और 'उल्लाला' छंद के पहले और तीसरे चरणों में पंद्रह मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरणों में तेरह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

ऽऽ।। ।।ऽ। ।।। ।।।। ऽ।। ऽ

नीलांबर परिधान, हरित पट पर सुंदर है,
सूर्य-चंद्र युग-मुकुट, मेखला, रत्नाकर है।

नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं,
बंदी जन खग-वृंद, शेष फन सिंहासन हैं। (रोला)
।।ऽ ।।ऽ। ।ऽ।ऽ ।।ऽऽ ।।ऽ। ऽ
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥ (उल्लाला)

मैथिलीशरण गुप्त : पद्य प्रबंध
(काव्य संकलन पृ० ४८)

कुंडलिया : कुंडलिया छंद में भी छप्पय की भाँति छः चरण होते हैं, और प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं। पर ये चौबीस मात्राएँ एक छंद की न होकर दोहा और रोला इन दो छंदों की होती हैं। ये दोनों छंद मानो कुंडली रूप से एक दूसरे से गुँथे होते हैं, इसलिए इसे कुंडलिया छंद कहते हैं। जिस शब्द से इस छंद का प्रारंभ होता है उसी से इसका अंत भी होता है; साथ ही दोहे का चौथा चरण रोला छंद के पहले चरण का एक भाग होकर आता है।

हिन्दी साहित्य में दीनदयाल गिरि और गिरिधर कविराय की कुंडलिया प्रसिद्ध हैं।

उदाहरण—

ऽ।। ऽ। । ऽ।ऽ ।।ऽऽ ।।ऽ।
दौलत पाय न कीजिए, सपनेहू अभिमान,
चंचल जल दिन चारि को, ठाँउ न रहत निदान। (दोहा)
ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में जस लीजै
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत,
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥ (रोला)

—गिरिधर

—:०:—

PU 40 T